इकाई 6 शिक्षा क्षेत्र*

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 विषय प्रवेश

6.2 मानव पूँजी और मानव विकास : विभेद

6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा

6.33 उच्च शिक्षा

6.4 शैक्षणिक उपलब्धि/परिणाम

6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता

6.4.2 गुणवत्ता

6.5 शिक्षा का वित्तीयन

6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क

6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत

6.6 सार-संक्षेप

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'मानव पूँजी' और 'मानव विकास' शब्दों के बीच भेद कर सकें;
- भारत में शिक्षा क्षेत्र में संवृद्धि का वर्णन कर सकें;
- शिक्षा क्षेत्र में विस्तार की पर्याप्तता के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक आयामों के विश्लेषण कर सकें;
- स्त्री-पुरुष समता एवं गुणवत्ता आयामों के संदर्भ में शिक्षा क्षेत्र की कार्य-निष्पत्ति की समालोचना कर सकें;
- अन्य देशों से तुलनात्मक रूप में भारत के शिक्षा क्षेत्र पर सार्वजनिक व्यय में प्रवृत्तियों की चर्चा कर सकें; और
- शिक्षा क्षेत्र का वित्त प्रबंध करने के वैकल्पिक स्रोतों की रूपरेखा के साथ शिक्षा के वित्त प्रबंधन में 'राज्य' बनाम 'बाज़ार' की भूमिका स्पष्ट कर सकें।

*प्रो. सेबक जाना, मिदनापुर विश्वविद्यालय

6.1 विषय प्रवेश

शिक्षा जिस पूँजी के निर्माण में योगदान देती है उसे 'मानव पूँजी' की संज्ञा दी जाती है। मानवीय पूँजी 'भौतिक पूँजी' से भिन्न होती है, परंतु वह परवर्ती की संपूरक भी है। भौतिक पूँजी आर्थिक संवृद्धि में सहायक होती है जो कि, बदले में, ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती है जिनमें बेहतर शिक्षा सुविधाओं की माँग उठती है। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मानव पूँजी निर्माण होता है। मानव पूँजी निर्माण, आर्थिक संवृद्धि को तेज़ करता है। इस प्रकार, विकास के ये सामाजिक पहलू नीति-निर्माताओं और राजनीतिक नेताओं दोनों को समान रूप से आकर्षित करते हैं, हालाँकि प्रत्येक के लिए उसके भिन्न-भिन्न कारण हैं। इस संदर्भ में, प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक क्षेत्र के विकास के दो विशिष्ट उपक्षेत्रों में से एक से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे अर्थात् भारतीय अर्थव्यवस्था में शिक्षा क्षेत्र (दूसरा उपक्षेत्र स्वास्थ्य है)।

6.2 मानवीय पूँजी और मानव विकास : विभेद

मानवीय पूँजी को जनसमुदाय द्वारा धारण किए जाने वाली ज्ञान-राशि और उस ज्ञान को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करने की उसकी क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। मानवीय पूँजी में *इसीलिए* समस्त ज्ञान, प्रतिभाएँ, कौशल, योग्यताएँ, अनुभव, बुद्धि, प्रशिक्षण, निर्णय तथा वैयक्तिक रूप से एवं सामूहिक रूप से लब्ध प्रज्ञा आदि शामिल होते हैं, जिनका संचयी योग राष्ट्रों एवं संगठनों को अपने लक्ष्य हासिल करने हेतु उपलब्ध एक संपदा के रूप में निरूपित किया जाता है। 1950 के उत्तरार्ध तक अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में मानीवय पूँजी में निवेश की भूमिका पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। इस अवधारणा का जन्म दिसंबर, 1960 में अमेरिकन इकॉनोमिक एसोसिएशन को प्रो. थिओडोर डब्ल्यू. शुल्ज़ के अध्यक्षीय भाषण में देखा जा सकता है। शुल्ज़ (1961) द्वारा प्रतिपादित मानवीय पूँजी सिद्धांत ने मनुष्यों में शिक्षा को निवेश स्वरूप मानने और इसे आर्थिक संवृद्धि के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में जानने के लिए एक सशक्त आधार दिया। मानवीय पूँजी सिद्धांत के अनुसार, ''शिक्षा अर्थव्यवस्था के परंपरागत क्षेत्र और आधुनिक क्षेत्र, दोनों, द्वारा अपेक्षित ज्ञान प्रदान करके व कौशल अंतर्निवेशित करके अनगढ़ मनुष्यों को उत्पादनशील 'मानवीय पूँजी' बना देती है। इस प्रकार, वह लोगों को समाज के पहले से अधिक लाभकारी सदस्य बना देती है– न सिर्फ पण्य क्षेत्र में, बल्कि घरों में भी और साथ ही, पूरे समाज में भी। भारत समेत लगभग सभी देशों में उपलब्ध साक्ष्य ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों के अनुपात और अनपढ़ लोगों के अनुपात के बीच महत्त्वपूर्ण सकारात्मक साह्चर्य स्थापित करते हैं।

मानव विकास, दूसरी ओर, लोगों के अधिकारों और अवसरों को परिवर्धित करने की ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिससे उनके समग्र कल्याण में बढ़ोतरी होती है। मानव विकास जनसाधारण की असली आज़ादी की बात कहता है, जिससे कि वे तय कर सकें कि उन्हें क्या बनना है, क्या करना है और कैसे रहना है। मानव विकास की संकल्पना अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक़ द्वारा विकसित की गई, जो इस अवधारणा पर आधारित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य मानव क्षेम-कल्याण के अभिन्न अंग हैं क्योंकि जब लोगों के पास वांछित योग्यता और एक स्वस्थ शरीर होगा, तभी वे एक उत्तम और सार्थक जीवन जी सकेंगे। इस प्रकार, मानव विकास एक व्यापक

संकल्पना है जिसमें मनुष्यों को ही अपने आप में साध्य मानकर चला जाता है। मानव विकास तभी होता है जब किसी अर्थव्यवस्था में अधिकांश लोग शिक्षित और स्वस्थ हों।

6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र

सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सरल बनाने में शिक्षा की भूमिका को भली-भाँति पहचाना गया है। यह ऐसे अवसर पैदा करती है जिससे वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही क्षमताओं में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। शिक्षा, अपने व्यापकतम अर्थ में, लोगों को लाभकारी रोज़गार अवसर सुलभ कराकर उन्हें विभिन्न प्रकार के कौशल एवं ज्ञान से संपन्न करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आगत है। शिक्षा में सुधारों से न सिर्फ़ दक्षता बढ़ाए जाने की बल्कि जीवन की समग्र गुणवत्ता भी बढ़ाए जाने की अपेक्षा की जाती है। भारत में अनुसरण की जा रही वर्तमान संवृद्धि युक्ति द्रुत एवं समावेशी संवृद्धि हासिल करने के लिए एक प्रमुख साधन के रूप में शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देती है। इसके दायरे में शिक्षा पिरामिड के सभी घटकों को समाविष्ट करते शिक्षा क्षेत्र को दृढ़ता प्रदान करने हेतु अभिकल्पित कार्यक्रम ये हैं : (i) प्राथमिक शिक्षा; (i) माध्यमिक शिक्षा; तथा (iii) उच्च शिक्षा।

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा, यथा कक्षा I-VIII जिनमें प्राथमिक (I-V) और उच्चतर प्राथमिक (VI-VIII) स्तर होते हैं, शैक्षिक प्रणाली पिरामिड का आधार है और इसी पर हमारे सभी विकास कार्यक्रमों में ज़ोर दिया गया है। प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (UEE) को सन् 1999 में सर्व शिक्षा अभियान (SSA) कार्यक्रम के अंगीकरण से काफ़ी विस्तार मिला है। यह योजना पाँच सिद्धांतों द्वारा निर्देशित रही है, यथा– (i) व्यापक सुलभता, (ii) व्यापक नामांकन, (iii) व्यापक धारण, (iv) व्यापक उपलब्धि, एवं (v) समता। इनके अलावा, उक्त अभियान (SSA) '6 से 14 वर्ष की आयु-वर्ग के सभी बच्चों' के लिए उत्तम गुणवत्ताकारी प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करने को अवश्यकरणीय मानता है। इसको सुनिश्चित करने के लिए 86 वें संविधान संशोधन (2002) में नया अनुच्छेद (21-A) शामिल किया गया जो '6 से 14 वर्ष आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में' प्रदान करता है। भारत में 'प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक' विद्यालयों की वृद्धि अवधि 1951-2015 के दौरान छह गुना (2 लाख से 13 लाख) रही। इन विद्यालयों में नामांकन (वर्ष 1951 में 2.2 करोड़ से वर्ष 2015 में 19.8 करोड़) नौ गुना बढ़ा है।

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के बीच एक सेतु का काम करती है। प्राथमिक शिक्षा की भाँति, माध्यमिक शिक्षा के भी दो भाग हैं, यथा माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 9 और 10 आती हैं) तथा वरिष्ठ माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 11 और 12 आती हैं)। चूँकि प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक स्वीकृत लक्ष्य बन गया है, इस स्वप्न को आगे माध्यमिक शिखा के सर्वव्यापीकरण की ओर ले जाना अनिवार्य हो गया है, जो कि अधिकांश विकसित देशों और नव-औद्योगीकृत पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में काफ़ी हद तक हो भी चुका है। अब तक माध्यमिक शिक्षा का ख़ास ज़ोर 'समान स्कूल प्रणाली' को महत्त्व देते हुए सुलभता बढ़ाने और विषमताएँ घटाने पर ही रहा है, जिसमें किसी क्षेत्र विशेष में विद्यालयों के लिए पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से

विद्यार्थियों को लेना अनिवार्य होता है। शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने को महत्त्व देते हुए पाठ्यचर्याओं के संशोधन पर भी विशेष आग्रह रहा है। सारतः शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने का अर्थ है– रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रम प्रदान किए जाने पर ध्यान देना, महत्त्व दिए जाने के अन्य क्षेत्र हैं– (i) मुक्त शिक्षा प्रणाली का विस्तार एवं विविधीकरण; (ii) अध्यापक प्रशिक्षण का पुनर्विन्यास, आदि। ये उद्देश्य अब तक अंशतः ही पूर्ण हुए हैं। माध्यमिक शिक्षा हेतु संस्थानों की संख्या वर्ष 2001 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 2.0 लाख हो गई। इन संस्थानों में नामांकन वर्ष 2001 में 2.9 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2015 में 6.2 करोड़ हो गया। तद्नुसार, इन संस्थानों की संख्या और उनमें नामांकन 2001.15 की अवधि में 2 गुना बढ़ा है।

6.3.3 उच्च शिक्षा

1950 व 1960 के दशकों में उच्च शिक्षा में किए गए निवेश ने स्वाधीन भारत में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीतिक लोकतंत्र के दृढ़ीकरण में महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान देते हुए भारत को अनेक क्षेत्रों में सशक्त ज्ञान आधार प्रदान किया है। महाविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 38 लाख हो गई, यथा 38 गुना वृद्धि। इसी प्रकार, विश्वविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 27 से बढ़कर वर्ष 2015 में 760 हो गई, यथा 28 गुना वृद्धि। इन 'महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों' में संयुक्त नामांकन वर्ष 1951 में 4.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 3.42 करोड़ हो गया, यथा लगभग 86 गुना। तथापि, अब तक हुए विस्तार के बावजूद, वर्तमान व्यवस्था पर ऐसी कुशल मानव शक्ति की वांछित संख्या उपलब्ध कराने का दबाव बना ही हुआ है जो कि अर्थव्यवस्था की माँगों को पूरा करने में सहायक वांछित ज्ञान एवं तकनीकी कौशलों से संपन्न हो। अर्थव्यवस्था की त्वरित संवृद्धि ने पहले ही उच्च-गुणवत्ता वाली तकनीकी मानवशक्ति की कमी पैदा कर दी है। इसके अतिरिक्त, विकसित देशों से भिन्न, जहाँ युवा कार्यबल उच्चतर निर्भरता अनुपात के साथ तेज़ी से घट रहा है, भारत जनांकिकीय संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है, जहाँ लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष से नीचे आयु वालों की है। परंतु यह लाभ आर्थिक लाभ के रूप में तभी साकार किया जा सकता है जबकि युवाओं के लिए अवसर मूल विज्ञान. शास्त्रों, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य परिचर्या, वास्तुकला, प्रबंधन, आदि विभिन्न क्षेत्रों में विस्तीर्ण मान एवं वैविध्य पर व्याप्त हों। ऐसा तभी संभव होगा जब द्रुत-विस्तार उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा क्षेत्रों में एक लंबे समय से विलंबित सुधारों के साथ आरंभ किया जाएगा।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) मानवीय पूँजी को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? मानवीय पूँजी को पहचान दिलवाने का श्रेय किस अर्थशास्त्री को दिया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मानव विकास का विचार मानव पूँजी से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) वे पाँच सिद्धांत कौन.से हैं जिनसे सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम नियंत्रित होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) भारत में 'प्राथमिक शिक्षा' के संबंध में विस्तार का क्या महत्त्व रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) देश में 'माध्यमिक शिक्षा' व्यवस्था में 'समान स्कूल प्रणाली' का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण क्या रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) भारत में 'उच्च शिक्षा' के संबंध में विस्तार-प्रसार का कितना विस्तार हुआ है?

.....

.....

.....

.....

.....

7) क्या आप मानेंगे कि शिक्षा क्षेत्र में विस्तार-प्रसार अर्थव्यवस्था की अपेक्षाओं के अनुरूप रहा है? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 शैक्षणिक उपलब्धि/परिणाम

शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है जिसे अब शिक्षा का अधिकार संबंधी अधिनियम के माध्यम से एक मौलिक अधिकार भी बना दिया गया है : बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम अर्थात् शिक्षा का अधिकार– RTE)। जबकि उच्च शिक्षा आवश्यक है, प्राथमिक शिक्षा उस आधार की भूमिका निभाती है जिस पर आगे की पढ़ाई की अधिरचना की जा सकती है। विद्यालयों में नामांकन हाल के वर्षों में यथेष्ट रूप से बढ़ा है, परंतु पठन, लेखन एवं अंकगणितीय संक्रियाओं संबंधी मूल संकल्पनाओं में विद्यार्थियों का कार्य-प्रदर्शन निम्न ही रहा है। इसके अलावा, शिक्षा सुलभता और शिक्षा समापन दोनों में ही व्यावहारिक लिंग भेद आधारित पूर्वाग्रह चिंता का मुख्य कारण रहा है। इनके कारण ही, मौलिक शिक्षा व्यवस्था के घटिया प्रदर्शन में भी व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताएँ विद्यमान हैं। कुछ कारण, जैसे– (i) गरीबी; (ii) व्यापक बाल-श्रम बाज़ार की विद्यमानता; (iii) विद्यालयी शिक्षा के बाद निश्चित रोज़गार का अभाव; तथा (iv) अवसंरचनात्मक समस्याएँ, भारत में प्राथमिक शिक्षा प्रणाली को अभिशप्त करती बुराइयों के लिए ज़िम्मेदार मानी जाती हैं। स्कूलों में उपस्थिति के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना, विद्यालयी प्रक्रिया को बच्चों के लिए आकर्षक बनाना, मिडिल और हाई स्कूल पाठ्यचर्या को व्यावसायिक एवं रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रमों के अनुरूप बनाना तथा विद्यालयों में बेहतर अवसंरचना उपलब्ध कराना– ये कुछ ऐसी नीतियाँ हैं जिन पर परिदृश्य को सुधारने के लिए ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

साक्षरता दर को शैक्षणिक लब्धि में विषमता उज़ागर करने के मूल संसूचकों में एक माना जाता है। इस संबंध में शहरी-ग्रामीण अंतर यथेष्ट रूप से कम हुआ है (यथा, वर्ष 1961 में 34 प्रतिशत से वर्ष 2011 में 16 प्रतिशत)। इसके बावजूद, ग्रामीण भारत में प्रगति शहरी साक्षरता स्तरों तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं रही है (यथा, वर्ष 2011 में ग्रामीण भारत हेतु 69 प्रतिशत के मुकाबले शहरी साक्षरता दर 85 प्रतिशत रही)। राज्यवार उपलब्धि दर्शाता है कि समग्र साक्षरता में जहाँ केरल (94 प्रतिशत) (मिज़ोरम, लक्षद्वीप एवं त्रिपुरा के साथ) शीर्ष पर बना हुआ है, वहीं बिहार समग्र साक्षरता में सबसे नीचे (61.8 प्रतिशत) है। लक्षद्वीप और केरल में ग्रामीण-शहरी विषमता निम्नतम रही है, जहाँ दोनों की ही गिनती उच्च प्रदर्शन वाले राज्यों में हुई है। उपलब्धि में विषमताएँ कई अन्य मोर्चों पर भी बनी रही हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्त्री-पुरुष विषमता एवं गुणवत्ता के लिहाज से हैं।

6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता

दो ऐसे सूचक हैं जो शिक्षा में स्त्री-पुरुष विषमता आधारित कार्य-प्रदर्शन को उजागर करते हैं। ये हैं– (i) सकल नामांकन अनुपात (GER); और (ii) स्त्री-पुरुष समता

सूचकांक। सही-सही आयु वर्षों द्वारा नामांकन पर आँकड़े उपलब्ध न होने पर 'निर्बल नामांकन अनुपात' के स्थान पर प्रयुक्त उक्त अनुपात (GER) शिक्षा में भागीदारी का सामान्य स्तर उज़ागर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अनुपात (GER) शिक्षा के स्तर द्वारा ही परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, प्राथमिक शिक्षा के लिए, यह अनुपात (GER) किसी वर्ष में कुल पात्र औपचारिक प्राथमिक विद्यालय.योग्य आयु वाले जनसमुदाय में से वास्तविक नामांकन के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है। कोई अनुपात GER $\geq$ 1 (100 प्रतिशत) दर्शाता है कि सिद्धांततः कोई राज्य अथवा देश अपने सभी विद्यालय-योग्य आयु वाले जनसमुदाय को शिक्षा संस्थाओं में समायोजित करने में सक्षम है। यह नामांकित पात्र जनसमुदाय का वास्तविक अनुपात नहीं दर्शाता। दूसरे शब्दों में, GER $\geq$ 1 वाले GER की उपलब्धि वास्तविक उपलब्धि की एक आवश्यक परंतु अपर्याप्त शर्त है। एक विशिष्ट स्थिति जहाँ GER 1 से अधिक हो सकता है, तब होगी जब 'अधिक-वय' एवं 'पुनरावर्तक' भी शामिल कर लिए जाएँ। उक्त अनुपात (GER) इसी व्याख्या की अपेक्षा करता है। पहले बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग परिकलित, 'बालकों के प्रति बालिकाओं हेतु GER' के अनुपात को फिर 'स्त्री-पुरुष समता सूचकांक' (GPI) के रूप में परिभाषित किया जाता है। हाल की अवधि 2007-13 के लिए यह सूचकांक दर्शाता है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा हेतु यह 1 के स्तर को पार कर चुका है। इसके अलावा ड्रॉपआउट (बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने) की दर के लिहाज से भी शिक्षा के चार में से तीन स्तरों, यथा प्राथमिक, माध्यमिक एवं वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए स्त्री-पुरुष समता सूचक में महत्त्वपूर्ण सुधार आया है (उदाहरण के लिए, वर्ष 2013-14 में यह प्राथमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 4.1 एवं बालकों हेतु 4.5 रहा, माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 17.8 एवं बालकों हेतु 17.9 रहा तथा वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 1.6 एवं बालकों हेतु 1.5 रहा)। तुलनात्मक रूप से, इसीलिए, शिक्षा के केवल 'उच्चतर प्राथमिक' स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर बालकों से ऊँची रही, यथा– बालिकाएँ (4.5) और बालक (3.1) (2013-14)। यह देखते हुए कि वर्ष 1960-61 में ड्रॉपआउट दर 65 प्रतिशत तक ऊँची थी, इस संबंध में एक बड़ा सुधार आया है। एक पहलू जिस पर कि बालिकाओं के बढ़ते नामांकन संबंधी उपलब्धि निर्भर कर सकती है, 'अध्यापिकाओं की संख्या प्रति 100 अध्यापक' है। यह संख्या वर्ष 1951 में लगभग 20% तक नीची थी (तीन में से प्रत्येक विद्यालयी स्तर पर)। वर्ष 2011-12 तक यह शिक्षा के विभिन्न स्तरों हेतु 65-80 के स्तर तक क्रमिक रूप से बढ़ी है। यद्यपि, इस लिहाज़ से सुधार आया है, फिर भी शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापिकाओं की संख्या बढ़ाने के लिए गुंजाइश है, वृहत्तर लिंग समता लाने की दिशा में भी और विद्यालयों से बालिकाओं की ड्रॉपआउट दरों को न्यूनतम करने के लिए भी।

6.4.2 गुणवत्ता

एक ग़ैर-सरकारी संगठन 'प्रथम' द्वारा ग्रामीण भारत में बच्चों की पठन एवं अंकगणितीय क्षमताओं का एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण प्रतिवर्ष करवाया जाता है। अपने मापदंडों और व्यापक कवरेज़ के चलते, इसकी शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट (ASER) एक अनूठी पहल है। कक्षाओं I और VIII के बीच बच्चों की शिक्षा-ग्रहण उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु यह एकमात्र भारतीय राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण है। अंकगणितीय क्षमता मापने के लिए बढ़ती कठिनाई की चार मूल परीक्षाएँ होती हैं और विद्यार्थियों को प्रत्येक परीक्षा के निम्न स्तर को पास कर लेने के बाद ही देने को कहा जाता है। ये हैं– (i) एक से नौ तक यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (ii)

11 से 99 के बीच यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (iii) हासिल लेकर दो-अंकीय संख्यात्मक प्रश्नों को घटाकर हल करना; और (iv) एक-अंक द्वारा तीन-अंक को भाग वाले संख्यात्मक प्रश्नों को हल करना। वर्ष 2010 में सर्वेक्षण के परिणामों ने दर्शाया कि कक्षा III में केवल 37 प्रतिशत बच्चे ही 100 तक की संख्याएँ पहचान सकते थे। इसके अलावा, मात्र 27 प्रतिशत विद्यार्थी ही अगले स्तर, यथा घटा करना तक पहुँच सके थे। और भी अधिक चिंताजनक यह बात थी कि उच्चतम परीक्षा स्तर तक पहुँचने वाले बच्चों का अनुपात वर्ष 2005, जबकि सर्वेक्षण प्रथम बार करवाया गया, से निरंतर गिरता रहा है। वर्ष 2005 में कक्षा III में कम से 15 प्रतिशत बच्चे सभी परीक्षाएँ पास कर लेते थे, जबकि वर्ष 2010 में यह घटकर मात्र 9 प्रतिशत रह गया। साथ ही, वर्ष 2010 में कक्षा VIII में 67 प्रतिशत बच्चे उच्चतम स्तर तक जा सके थे, जबकि वर्ष 2005 में तद्नुरूप संख्या 70 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि नामांकन बढ़ाने से शिक्षा-प्राप्ति का स्तर स्वतः नहीं सुधर जाता।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता भी भारत में एक प्रमुख सरोकार रहा है। उक्त स्थित को सुधारने के लिए इस दिशा में उठाए गए कुछ नीति उपाय निम्नवत् है– (i) बाज़ार माँगों के साथ तुल्यकालिक बनाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम को पुनराभिकल्पित करना; (ii) सीखने के अंतर्क्रियात्मक तरीकों पर अधिक ज़ोर देना; (iii) मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षाओं में परिवर्तन; (iv) अर्ध-वार्षिक पाठ्यक्रम व्यवस्था लागू करना; (v) अध्यापकों का मूल्यांकन; (vi) संस्थानों का श्रेणीकरण; (vii) अंतर्सांस्थानिक गतिशीलता सामर्थ्य हेतु क्रेडिट प्रणाली शुरू करना; (viii) प्राध्यापक वर्ग विकास कार्यक्रम; (ix) शैक्षिक योग्यताओं का राष्ट्रीय डेटाबेस बनाकर रखना; आदि। भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति ने प्रत्यायन अभिकरणों की स्थापना कर देशभर में उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर खास ज़ोर दिया है। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे पास उच्चतर शिक्षा के 13 नियामक निकाय हैं, शिक्षा की गुणवत्ता काफ़ी निम्न है और इन कार्यक्रमों में विषय वस्तु 'व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं' के प्रति कम प्रासंगिक है। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (NAAC) द्वारा मूल्यांकन किए गए 3,674 महाविद्यालयों में से केवल 24.4 प्रतिशत महाविद्यालयों को ही 'ए' ग्रेड दिया गया है। हमारी शिक्षा व्यवस्था एक रोग से ग्रस्त है जिसे 'डिप्लोमा डिसीज़' की संज्ञा दी गई है, अर्थात् यह ज्ञान एवं कौशल अभिहस्तांतरित करने पर अभिलक्षित नहीं है, बल्कि यह प्रमाणन एवं प्रत्यायन से कहीं अधिक संबंध रखती है। दरअसल, मानव पूँजी की वृद्धि में इसका योगदान अत्यल्प है और कुछ व्यावसायों हेतु उठती माँगों को पूरा करने में अक्षम है।

6.5 शिक्षा का वित्तीयन

वित्तीयन और विशेषतः उच्च शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का तरीका, उच्चतर शिक्षा हेतु अभिकल्पित सभी प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अत्यावश्यक है, यथा विस्तारण, समावेशन एवं उत्कृष्टता। यद्यपि लोक वित्तीयन उच्चतर शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का प्रबल स्रोत रहा है, केंद्र व राज्यों दोनों के सम्मुख राजकोषीय संरोध तथा निश्चल राजस्व एवं बढ़ती लागत के बीच चौड़ी होती खाई ने सरकारी रूप से निधिबद्ध विश्वविद्यालयों को मज़बूर कर दिया कि वे निधिकरण के अतिरिक्त एवं वैकल्पिक स्रोत तलाशें। नई आर्थिक नीति के ही एक हिस्से के रूप में, नीतियों को इस प्रकार तैयार किया गया है कि वे उच्चतर शिक्षा के विस्तारण में योगदान देने के लिए उसके हस्तांतरण में निजी क्षेत्र को सम्मिलित करें। सरकारी और निजी निधिकरण के दो अंतर्बिंदुओं के बीच, हाल ही में, सरकार ने निजी क्षेत्र के साथ साझेदारियों की

संभावनाएँ तलाशना शुरू किया है ताकि निधिकरण के दोनों ही तरीकों का लाभ उठाया जा सके (हालाँकि, हमारे पास देश में कार्यरत सरकारी-निजी भागीदारी (PPP) के अनेक रूप पहले ही मौजूद हैं)। हमारे यहाँ अनेक सरकारी स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल और प्राइवेट स्कूल हैं। इसी प्रकार, उच्च शिक्षा स्तर पर यहाँ सरकारी कॉलेज, अंशतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) से निधिकृत कॉलेज, आदि हैं।

6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क

निधिकरण के स्रोत स्वरूप बाज़ार की भूमिका 'नब्बे के दशकोपरांत तब शुरू हुई जब विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा संरचनात्मक समंजन कार्यक्रमों में सुझाया गया कि शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों में सरकारी खर्च कम किया जाए। बाज़ार समर्थकों ने माना कि सरकार द्वारा प्रदत्त अर्थसहाय्य प्रतिगामी हैं क्योंकि मुख्य रूप से संभ्रांत वर्ग ही उच्चतर शिक्षा के लिए पहुँचता है और इस कारण वही इन परिदानों का प्रमुख लाभार्थी होता है। निधियाँ इस प्रकार ग़रीब वर्ग से अमीर वर्ग की ओर हस्तांतरित हो जाती हैं क्योंकि वह राशि जो ग़रीबों पर खर्च की जा सकती थी, घट जाती है। इसी को ठीक करने के लिए उनका कहना था कि सरकारी निधिकरण को उच्च शिक्षा से स्कूल-स्तर की शिक्षा की ओर मोड़ दिया जाए। बाज़ार समर्थकों द्वारा रखा गया एक अन्य तर्क यह था कि शिक्षा का राज्यीय निधिकरण शिक्षण संस्थानों को परतंत्र बनाएगा और इस कारण उन्हें कुशलतापूर्वक कार्य करने हेतु नितांत आवश्यक सांस्थानिक स्वायत्तता से वंचित करेगा। इससे बचने के लिए, यह सुझाव दिया गया कि निजी निधिकरण के सृजन को प्रोत्साहित किया जाए। यह भी तर्क दिया गया कि लागत वसूली उपाय शिक्षा की गुणवत्ता सुधारेंगे। विद्यार्थियों को अधिक कर्मठ बनाकर भी और अध्यापकों के बीच उत्तरदेयता का गुण मन में बैठाकर भी। निजी लाभ चूँकि सामाजिक लाभों की अपेक्षा अधिक होते हैं, माना गया कि लाभार्थीजन अपनी शिक्षा हेतु स्वयं भुगतान करने के इच्छुक होंगे ही।

बाज़ार प्रस्तावकों के इस तर्क का कि शिक्षा में निवेश पर सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कम होती है, 'राज्य निधिकरण समर्थकों हेतु' द्वारा निम्नलिखित आधारों पर उत्तर दिया जाता है। प्रथम, सामाजिक लाभ केवल उच्चतर शिक्षा के लिए कम होते हैं जबकि स्कूली शिक्षा हेतु एक सर्वसम्मति होती है कि इसे एक सार्वजनिक हित के रूप में लिया जाए। इसके अलावा, जब सकारात्मक बाह्यताएँ ध्यान में रखी जाती हैं तो परिणामित सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कहीं आगे निकल जाती है। इससे शिक्षा के निधिकरण में राज्य की भूमिका निर्णायक बन जाती है। दूसरे, उपभोक्तागण प्रायः उन लाभों से अनभिज्ञ होते हैं जिन्हें वे शिक्षा में निवेश करके प्राप्त करेंगे। इसके अलावा, वे समाज पर अपनी शिक्षा के सकारात्मक अधिप्लव प्रभावों पर भी संभवतः ध्यान न दें (जैसे– सुधरता परिवार स्वास्थ्य, उत्पादकता, ग़रीबी की दरों में गिरावट, आदि)। चूँकि सरकार को इस प्रकार के निर्णय लेने में अधिक विवेकी माना जाता है, शिक्षा के प्रावधान में राज्य निधिकरण अवसर की समानता सुनिश्चित करने हेतु वांछित होता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि हर कुटुंब/व्यक्ति शिक्षा में निवेश हेतु वांछित संसाधन संपन्न नहीं होता, राज्य परिदानों के अभाव में, केवल भुगतान में सक्षम ही स्कूल व कॉलेजों में नाम लिखवा पाएँगे। दूसरे शब्दों में, वे जो गुणवान हैं परंतु संसाधन विहीन हैं, बाहर ही रह जाएँगे।

समता के परिणाम प्राप्त करने के लिए बाज़ार प्रस्तावकों का तर्क था कि शिक्षा ऋणों की सुलभता सुधारी जा सकती है। तथापि, चूँकि पूँजी बाज़ार अपनी ही अपूर्णताओं से पीड़ित है, इस प्रकार के उपाय यथेष्ट नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त, चूँकि मानव पूँजी लोगों में ही सम्मिलित होती है, इसे द्रव संपत्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। भावी आय अवसरों की अनिश्चितता के कारण ऐसे ऋणों का पुनर्भुगतान प्रारंभ होने के लिए एक लंबी विकसन अवधि भी होती है। इस प्रकार के कारक लोगों द्वारा ऐसे ऋण प्राप्त किए जाने के साथ-साथ संस्थाओं को भी ऋण प्रस्तुत करने से रोकेंगे। इस प्रकार, अपूर्ण पूँजी बाज़ार की विद्यमानता एक ऐसा बड़ा कारण बन जाता है जिसकी वजह से शिक्षा में निवेश करने के लिए राज्य की भूमिका को जारी रखने की आवश्यकता है। एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि विपन्न वर्ग को शैक्षणिक ऋण समावेशन एवं समता के उद्देश्य पूरे नहीं करते क्योंकि ये ऋण केवल चुनिंदा पाठ्यक्रमों/संस्थाओं के लिए ही उपलब्ध होते हैं और इस प्रकार समावेशन का उद्देश्य पूरा होना प्रायः असंभव ही होता है।

6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

यदि हम सकारात्मक बाह्यताओं के रूप में अधिप्लव प्रभावों पर विचार करें तो शिक्षा किसी भी स्तर पर केवल प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर ही नहीं, एक 'लोकहित' के रूप में लिए जाने के योग्य है। अपने नियमनिष्ठ अर्थ में, शिक्षा को एक विशेष 'गुण वस्तु' के रूप में लिया जाता है। परिभाषा के अनुसार, 'शिक्षा' जैसी कोई भी वस्तु जिसे समाज अथवा सरकार द्वारा लोक वित्त के योग्य माना जाता है, विशेष गुण वस्तु के रूप में ली जाती है। अधिक सामान्य रूप से, विशेष गुण वस्तुओं को उन वस्तुओं (अथवा सेवाओं) के रूप में लिया जाता है जो कि सरकार नहीं चाहती कि लोग महज इसलिए अल्प-उपभोग करें कि उनका उपभोग उनकी 'भुगतान करने की क्षमता' पर निर्भर करता है। ऐसे अल्प-उपभोग को रोकने के लिए सरकार या तो ऐसी सेवाओं को आर्थिक सहायता देने का विकल्प चुनती है या फिर उन्हें उनके उपभोग बिंदु पर एकदम मुफ़्त उपलब्ध कराती है। शिक्षा के सार्वजनिक के साथ-साथ विशेष गुण वस्तु के मिश्रित अभिलक्षणों की दृष्टि से शिक्षा को प्रायः 'सार्वजनिक विशेष गुण वस्तु' भी कहा जाता है। शैक्षणिक सेवाएँ प्रदान करने हेतु निवेश पर प्रभाव डालते हुए, कोई विशाल प्रतिष्ठान अथवा निर्धारित लागत और साथ ही एक पुनरावर्तक परिचालन. लागत, सरकार के निवेश सरोकारों पर प्रभाव डालते अभिलक्षण निम्नवत् हैं– (i) उपभोक्ता अनभिज्ञता; (ii) पैमाने की तकनीकी मितव्ययताएं; (iii) उत्पादन एवं उपभोग में बाह्ताएँ; तथा (iv) बाज़ार में अंतर्निहित अपूर्णताएँ (जैसे ऋण संस्थाओं का अभाव)। शिक्षा में सार्वजनिक निवेश के मुद्दे पर, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में व्यय बताने की एक परंपरा सी है (तालिका 6.1)। इस संबंध में भारत के लिए रुझान दर्शाता है कि वर्ष 1961-81 के बीच शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय 1.5 प्रतिशत से 3 प्रतिशत अर्थात् दोगुना हो गया। तदोपरांत, यह वर्ष 1981 व 2001 के बीच यह मात्र 1 प्रतिशत और बढ़ पाया (वर्ष 2001 में 4.1 प्रतिशत)। सन् 2000 के पश्चात् के वर्षों में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय कम हुआ है (उदाहरणार्थ, 2005-06, 3.3 प्रतिशत)। वर्ष 2005-06 से 2007 तक 3.5 प्रतिशत से वर्ष 2010 में यह बढ़कर 4 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) (वर्ष 2014 में) के मात्र 4.1 प्रतिशत के आस-पास रहकर शिक्षा में सार्वजनिक व्यय की गतिहीनता अन्य देशों के साथ तुलनात्मक वर्णन में नितांत विषमता दर्शाती है (नेपाल 4.7 प्रतिशत, जर्मन 4.9 प्रतिशत, अमेरिका 5.2 प्रतिशत, यूनाइटेड किंग्डम 5.7 प्रतिशत, तथा दक्षिण अफ्रीका 6.1 प्रतिशत)। जैसा कि

ऊपर बताया गया है, भारत में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय में गिरावट राजकोषीय संरोधों के कारण है, जहाँ प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधन आबंटित किए जाते हैं, परंतु उच्च शिक्षा के लिए लागत वसूली की दिशा में रुझान नज़र आता है।

तालिका 6.1 : सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत स्वरूप शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

वर्ष	प्रतिशत
1960.61	1.5
1970.71	2.1
1980.81	3.0
1990.91	3.8
2000.01	4.1
2010.11	4.1

स्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत

शिक्षा संबंधी वित्त के बोझ को घटाने की दृष्टि से अनेक वैकल्पिक विधियाँ अपनाई गई हैं। इस उद्देश्य को पूरा करने का एक तरीका संस्थानों को दिए जाने वाले अर्थसहाय्य कम किए जाना है। इससे लागत साझा करने की विधियों का सहारा लेकर लागतों की वसूली आवश्यक हो जाएगी। लागत-साझेदारी एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा वित्तीयन का बोझ लाभार्थियों पर डाल दिया जाता है, यथा कुटुंब, उद्योग एवं स्वयं छात्र पर। लागत-साझेदारी मुख्यतः उच्च/व्यावसायिक शिक्षण कार्यक्रमों के संदर्भ में लोकप्रिय रूप से कार्यान्वित की जा रही है। इसके अंतर्गत अपनाई जाने वाली कुछ विधियों में शामिल हैं– (i) फ़ीस बढ़ाना; (ii) विभेदी फ़ीस प्राधार अपनाना; (iii) स्नातक कर; और (iv) छात्र ऋण।

फ़ीस बढ़ाने की विधि के अनेक रूप हैं– (i) समस्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में एकसमान वृद्धि; (ii) पाठ्यक्रमों की निवेश लागत के आधार पर फ़ीस वृद्धि; तथा (iii) वसूल की जाने वाली फ़ीस निर्धारित करने के लिए महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करना। इन सभी मामलों में, एकसमान पाठ्यक्रम पढ़ने वाले छात्रों से एकसमान ही फ़ीस वसूली जाती है। दूसरे शब्दों में, यहाँ भुगतान करने में सक्षम और भुगतान करने में अक्षम के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। यह दृष्टिकोण, तद्नुसार, समता के सरोकारों का उल्लंघन करता है। इसके निदान स्वरूप विभेदात्मक फ़ीस प्राधार की विधि का सुझाव दिया जाता है; यथा परिवार के आय-स्तर अथवा भुगतान क्षमता से संबद्ध पाठ्यक्रम फ़ीस। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वालों से कम फ़ीस वसूली जाती है और उच्च-आय समूहों से आने वालों से अधिक भुगतान करने को कहा जाता है। 'स्नातक कर' विधि में शिक्षित कार्यबल नियुक्त करने वाले नियोक्ताओं पर एक कर लगाया जाता है। इस विधि हेतु इस मामले को आधार बनाया जाता है कि ये जिन शिक्षित लोगों का लाभ उठा रहे हैं, उनके प्रशिक्षण पर ख़र्च नहीं कर रहे। यह विधि इस बात में अलाभकारी है कि इससे

नियोक्ता कम शिक्षित कर्मचारियों को रखने की ओर प्रेरित हो सकते हैं, जिससे शिक्षित वर्ग के बीच बेरोज़गारी की समस्या बढ़ सकती है। बहरहाल, चूँकि केवल शिक्षित कार्यबल ही उन विशिष्ट प्रकार के कार्यों को कर सकता है जो ज्ञान गहन होते हैं, इसका प्रतिस्थापन प्रभाव कम ही होने की अपेक्षा की जाती है। 'छात्र ऋण' की विधि लाभार्थियों को सीधे लक्ष्य बनाती है। जबकि सरकार द्वारा गठित अनेक समितियों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है, यह भी कहा जाता है कि इसने समता के सरोकारों को प्रतिकूलतः प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, यह विधि उन पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहन दिए जाने की ओर प्रवृत्त कर सकती है जो उच्चतर रोज़गार बाज़ार वाले हों और साथ ही उन पाठ्यक्रमों को अनदेखी कर सकती है जो किसी सामाजिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हो सकते हों। इस विधि के साथ एक अन्य समस्या अपर्याप्त रूप से विकसित ऋण बाज़ार और ऋणों की वसूली संबंधी समस्या भी है, जो कि अनिश्चित भावी रोज़गार बाज़ारों पर निर्भर करती है।

शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर हेतु एक सामान्यतः अपनाई जाने वाली विधि 'पूर्व आबंटन' है। इसका अर्थ है कि किसी उद्देश्य विशेष से किसी विशेष उपकर की उगाही। सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम ने इस विधि से अपने धन का बड़ा भाग सृजित किया है। अनेक देशों (विकसित एवं विकासशील दोनों) ने इस विधि को सफलतापूर्वक अपनाया है। एक अन्य विधि जो स्कूल स्तर पर सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जा चुकी है, वह है– 'प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण' (DBT) विधि। सरकारी स्कूलों की बड़ी समस्या है– शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती उत्तरदेयता। उक्त विधि (DBT) को इस समस्या का निदान बताया जाता है क्योंकि इससे ग़रीब कुटुंब/माता.पिता को अपनी पसंद के ही किसी स्कूल को चुनने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। यह एक प्रमाणक व्यवस्था है जिसमें कोई भी माता अथवा पिता किसी बच्चे को उस स्कूल में दाख़िला दिला सकता है जो उस प्रमाण-पत्र की राशि तक फ़ीस वसूल सकता हो। माता-पिता किसी भी प्रकार का संस्थान (निजी, सहायता प्राप्त अथवा सरकारी) चुन सकते हैं, जहाँ वसूली गई फ़ीस यदि प्रमाण-पत्र राशि से अधिक हुई तो परिवार द्वारा स्वयं वह अधिक राशि चुकाई जाएगी। प्रमाण-पत्र का मूल्य चूँकि 'पारिवारिक आय के प्रतिलोम' द्वारा निर्धारित किया जाता है (यथा, दरिद्रतर परिवारों को उच्चतर मूल्य के प्रमाण-पत्र मिलेंगे), इस विधि को वृहत्तर समता का साधन बन जाने की संभावना के रूप में देखा जाता है। इस विधि की एक आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह विधि पिछड़े/ग्रामीण क्षेत्रों में कारगर सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि ऐसे इलाकों में संभवतः जाने.माने प्राइवेट स्कूल न हों। तथापि, वर्ष 2014-15 हेतु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) से प्राप्त आँकड़े दर्शाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में निजी ग़ैर-सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों द्वारा वसूली गई प्रति माह माध्यमिक फ़ीस रु. 292/- रही जबकि शहरी क्षेत्रों में यह रु. 542/- थी। इस तथ्य के आलोक में, यह तर्क दिया जाता है कि रु. 500/- प्रति माह का एक अपेक्षाकृत कम मूल्य का प्रमाण-पत्र भी सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों तक में कुल खर्च का एक महत्त्वपूर्ण अंश निरूपित कर सकता है। उक्त विधि (DBT) के विषय में एक अन्य सरोकार यह है कि वर्तमान 'अनुदान सहायता' व्यवस्था से कैसे छुटकारा पाया जाए, जो कि अध्यापकों की वेतन अपेक्षाएँ पूरा करने के समतुल्य रखी जाती है। यह अनुदान व्यवस्था, विद्यालयों को प्राथमिकता देती है, न कि शिष्यों/छात्रों को। इस प्रकार का अनुदान छात्रों की संख्या को ध्यान में नहीं रखता है। यह अध्यापकों का उनकी उत्तरदेयता के प्रति रवैये को ठीक कर पाने के प्रयास में विफल ही रहा है। उक्त विधि (DBT) के साथ, यह कहा जाता है कि अध्यापकों को आकृष्ट करने,

प्रतिधारित करने व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करना होगा। इस विधि को लागू करने की दिशा में, सरकार 'विद्यालय समेकन' पर विचार कर रही है, जिसमें अति लघु विद्यालयों का नज़दीक के बड़े विद्यालयों के साथ विलय कर दिया जाता है और अध्यापकों को अधि-नामांकित विद्यालयों से अल्प-नामांकित विद्यालयों में पुनर्परिनियोजित कर दिया जाता है। अनेक देश (जैसे– कोलंबिया, चिली, नीदरलैंड, न्यूज़ीलैंड, अमेरिका) उक्त विधि (DBT) को उत्तर प्रभाव के साथ प्रयोग कर चुके हैं।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) शिक्षा में निकृष्ट कार्य-प्रदर्शन सुधारने के लिए किन विशिष्ट नीतियों की आवश्यकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्त्री-पुरुष समता सूचकांक (GPI) को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन अनुपात किस प्रकार सुधारा जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस बात को सिद्ध करने के लिए कि हाल के वर्षों में गुणवत्ता के लिहाज़ से स्कूल-स्तरीय शिक्षा व्यवस्था अवनत हुई हैं, उपलब्ध संसूचक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) जब बाज़ार प्रस्तावकों ने शिक्षा के सरकारी निधिकरण का विरोध किया तो कौन-से तर्क देकर इस व्यवस्था का पक्ष लिया गया?

.....

.....

.....

.....

6) शिक्षा को सार्वजनिक वस्तु कहना उचित होगा कि एक विशेष गुण वस्तु? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 सार-संक्षेप

भारत में शिक्षा क्षेत्र के परिमाणात्मक विस्तार में भारी प्रगति हुई है। फिर भी, शिक्षा हेतु माँग उपलब्ध आपूर्ति की सीमा से बाहर विस्तारित हो चली है। इसके कारण, शिक्षा प्राप्ति में विषमता परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही मोर्चों पर दिखाई पड़ती है। हमारे नीति-निर्माताओं का एक प्रमुख चिंत्य विषय यह रहा है कि उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली रूप से, समता संबंधी सरोकारों से समझौता किए बिना, किस प्रकार किया जाए। संसाधन के मोर्चे पर औचित्य स्थापन की दिशा में, स्कूल स्तरीय शिक्षा हेतु सार्वजनिक निधिकरण और शिक्षा के उच्च स्तर हेतु लागत-साझेदारी पर विचार किया जा रहा है। स्कूल स्तर पर अध्यापकों की उत्तरदेयता संबंधी जटिल समस्या को दूर करने के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, विद्यालय समेकन, आदि विधियाँ अपनाई जा रही हैं।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Varghese N.V. and G. Mallik, Eds. (2017). India Higher Education Report 2015, Routledge, 2017.

2) Romer, Paul M. (1990). "Human Capital and Growth: Theory and Evidence", *Carneige- Rochester Series on Public Policy* 32: 251-86.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) इसे जनसमुदाय द्वारा धारित ज्ञान भंडार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है और इसके दायरे में आते हैं– जानकारी, प्रतिभाएँ, कौशल, क्षमताएँ, अनुभव, प्रज्ञा, प्रशिक्षण, निर्णय, आदि। प्रो. थियोडोर डब्ल्यू. शुल्ज़।

2) लोगों के अधिकारों एवं अवसरों को शामिल करने और उसे समग्र मानव क्षेम से जोड़कर। यह, तद्नुसार, एक वृहत्तर संकल्पना है जो मानव मात्र को स्वयं में साध्य मानता है।

3) व्यापक सुलभता, व्यापक नामांकन, व्यापक धारण, व्यापक उपलब्धि तथा समता।

4) संस्थाओं के लिहाज से 6 गुना और नामांकन के लिहाज से 9 गुना (क्रमशः 2 लाख से 13 लाख और 2.2 करोड़ से 19.8 करोड़)।

5) 'समान स्कूल प्रणाली' के तहत, किसी क्षेत्र विशेष में स्थित स्कूलों के लिए यह आवश्यक है कि वे पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से विद्यार्थियों को प्रवेश दें।

6) महाविद्यालय 38 गुना तक, विश्वविद्यालय 28 गुना तक और महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में नामांकन 86 गुना तक।

7) नहीं। कारण : त्वरित विस्तार, उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण क्षेत्रों में लंबे समय से लंबित सुधारों के साथ नहीं हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) स्कूल में हाज़िरी के लिए प्रोत्साहन, मिडिल/हाई स्कूल पाठ्यक्रम को रोज़गारोन्मुखी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए सरल बनाना, आदि।

2) इसे 'बालिकाओं एवं बालकों के सकल नामांकन के सापेक्ष अनुपात' के रूप में परिभाषित किया जाता है।

3) विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अनुपात (प्रति 100 अध्यापक) बढ़ाने पर ध्यान देकर (उपभाग 6.4.1)।

4) शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट, जिसने ऐसे बच्चों के गिरते अनुपात की रिपोर्ट दी जो वर्ष 2005-2010 के दौरान एक स्तर से दूसरे स्तर के लिए पात्रता दर्शा सकते थे (उपभाग 6.4.2)।

5) सकारात्मक बाह्यताओं को विचारार्थ लिए जाने पर सामाजिक लाभ उच्च शिक्षा में भी ऊँचे माने गए। शिक्षा के निम्नतर स्तर (किसी भी स्थिति में), सार्वजनिक वस्तु की भाँति माने जाते हैं जो कि समग्र समाज को लाभ पहुँचाएंगे।

6) चूँकि शिक्षा के लाभ समग्र समाज को पहुँचते हैं, न कि सिर्फ़ उसको जो शिक्षित होता है, इसमें एक सार्वजनिक वस्तु का अभिलक्षण है। तथापि, ठीक इसी कारण, चूँकि इसके ग़ैर-सरकारी निधिकरण के कारण कुछ लोग इससे अल्प-लाभान्वित हो सकते है, इसे अधिक सटीक रूप से 'विशेष गुण वस्तु' के रूप में स्वीकार किया जाता है।